श्री शंभुनाथ डे

क्या आपने कभी 'काली मौत' के संबंध में सुना है ? यदि नहीं तो 'प्लेग महामारी' से हुई करोड़ों मृत्यु को बताने के लिए इन शब्दों का प्रयोग होता है। 'नीली मौत' भी इसी प्रकार की एक महामारी है, जिससे 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुमान अनुसार आज भी १३ - ४० लाख [13-40] लोग प्रतिवर्ष संक्रमित होते हैं जिनमें २१,००० - १, ४३,००० [21.000-1.43.000] मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं। इस बीमारी के जीवाणुओं से संक्रमित होने पर रोगी के शरीर पर 'नील धब्बे' दिखाई पड़ सकते हैं जिस कारण 'हैजा' को 'नीली मौत' उपनाम दिया गया है।

एक वयस्क मानव शरीर में लगभग ४४ [44] लीटर पानी होता है। हैजा रोगी को भयानक दस्त हो जाता है और रोगी २४ घंटे में लगभग २० लीटर पानी खो सकता है। इतना अधिक पानी खो देने पर रक्त गाढ़ा हो जाता है और अत्यधिक निर्जलीकरण के कारण त्वचा नीली हो जाती है। इसलिए इसका नाम 'नीली मौत' पड़ा।

१८१७ - १८६० [1817-1860] के बीच विश्व में तीन बार इस महामारी के प्रकोप से १५ [15] लाख से अधिक लोगों की मृत्यु का अनुमान है। १८६३ – १९१७ [1863-1917] के बीच विश्व में हैजा पुन: तीन बार फैला और लगभग २.३ करोड़ लोगों की मृत्यु हुई। १८८१ - १८९६ [1881-1896] के समय यूरोप के देश हैजा से ग्रसित थे। डॉ. रोबर्ट कौख, जिन्हें जीवाणु विज्ञान का जनक माना जाता है, १८८३ [1883] में हैजा पर शोध करने के लिए कलकत्ता आए। उन्होंने हैजा के जीवाणु **'विब्रियो कोलरा'** को खोज निकला और १८८४ [1884] में अपना शोध पत्र प्रकाशित किया। १८५५ [1855] में ब्रिटिश डॉ. जॉन स्नो पहले ही पता लगा चुके थे कि हैजा दूषित पानी पीने से फैलता है पर फिर भी वैज्ञानिक इसके उचित उपचार की खोज में विफल रहे। डॉ. कौख का अनुमान था कि 'विब्रियो कोलरा' एक विष स्रवित करता है जो रोगी के रक्त परिसंचरण तन्त्र पर आघात करता है और उसे निष्क्रिय बना देता है (पृष्ठ: ९४६) [946]।

दुर्भाग्यवश जीवाणुतत्ववेत्ताओं को विब्रियो कोलरा द्वारा उत्पादित इस विष की प्रकृति का पता लगाने में ७६ [76] वर्ष लग गए। संभवत: डॉ. कौख के विचार वैज्ञानिकों के लिए इतने प्रभावशाली थे कि वे हैजा के जीवाणु को विभिन्न स्वस्थ जानवरों के रक्त में प्रवेश करवा कर परीक्षण करते रहे परन्तु प्रयोगशाला में कभी भी जानवरों में हैजा बीमारी के लक्षण नही दर्शा सके। वैज्ञानिक डॉ. कौख के गलत विचार के कारण अंधेरे में ही रहे।

डॉ. शंभुनाथ डे (०१. ०२. १९१५ - १५. ०४. १९८५) [01.02.1915-15.04.1985] कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के पैथोलॉजी और बैक्टीरियोलॉजी विभाग के प्रमुख थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में ३० [30] से अधिक शोध पत्र प्रकाशित किए और हैजा व इसके रोगजनन पर उत्कृष्ट लेख लिखे। १९५० - ६० [1950-60] के दशक में उनके मौलिक कार्यों ने 'विब्रियो कोलरा' द्वारा उत्पादित विष से संबंधित पहेलियों को सुलझा दिया।

डॉ. शंभुनाथ, डॉ. कौख के विचार से सहमत नहीं थे। उनके अनुमानानुसार हैजा छोटी आंत की अंतरपट की कोशिकाओं को आघात करता है। डॉ. डे ने 'विब्रियो कोलरा' के विष '**कोलेराजेन**' को खोज निकाला व खरगोश पर सफल प्रयोग से अपने अनुमान को सिद्ध किया। डॉ. शंभुनाथ यह भी समझाने में सफल रहे कि हैजा के कारण शरीर में पानी की कमी क्यों हो जाती है। उनकी यह खोज पूर्णत: नई खोज थी जिसने चिकित्सा अनुसंधान को एक नई दिशा दी।

हैजा के रोगियों में व्यापक द्रव हानि को पूरा करने के लिए डॉ. हेमेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा खोजी गई मौखिक पुनर्जलीकरण चिकित्सा (पृष्ठ: ३९४) [394], जिससे कई रोगियों की जान बचाई जा सकी, को हैजा के विषाक्त रोगाणुओं की डॉ. शंभुनाथ डे की खोज का प्रत्यक्ष परिणाम माना जाता है।

डॉ. हेमेंद्र नाथ चटर्जी पश्चिम बंगाल के एक भारतीय वैज्ञानिक थे, जिन्होंने दस्त के उपचार के लिए सबसे पहले मौखिक पुनर्जलीकरण खार (ओरली रिहाइड्रेटेड सेलाइन: ओ. आर. एस.) की प्रभावशीलता को तैयार और प्रदर्शित किया था।

डॉ. शंभुनाथ डे की यह विश्व-प्रसिद्ध खोज व निष्कर्ष उनके 'नीलरतन सरकार मेडिकल कॉलेज', 'कलकत्ता मेडिकल कॉलेज' और 'बोस इंस्टीट्यूट', कोलकाता में अत्यंत साधारण प्रयोगशाला में किए गए कार्यों से सामने आए। उनकी अनुसंधान पद्धति सरल, प्रयोग में आसान और सस्ती थी। अपने कौशल से उन्होंने निष्पादन में उत्कृष्टता के उच्चतम मानकों को स्थापित किया।

डॉ. डे 'कोलेराजेन' की पहचान करने के लिए परिश्रम कर रहे थे ताकि हैजा के उपचार के लिए टीका बनाया जा सके। भारत में आधुनिक उपकरणों की कमी

Shri Shambhunath De

Have you ever heard of 'Black Death'? It is the term used to describe the millions of deaths caused by the 'plague epidemic'. The 'Blue Death' is also a similar epidemic. According to the 'World Health Organization' estimation, around 1.3 - 4 million people get infected annually, out of which 21,000 - 1, 43,000 die. When infected with the bacteria of this epidemic, 'blue spots' may appear on the patient's body, due to which 'Cholera' is also called 'Blue Death'.

An adult human body contains around 44 liters of water. The cholera patient gets severe diarrhea and the patient can lose about 20 liters of water in 24 hours. Because of this high loss of water, the blood becomes thick and the skin turns blue. Hence the name 'Blue Death'.

This pandemic broke out thrice in the world between 1817 – 1860 and more than 1.5 million people are estimated to have died due to it. Cholera spread again three times between 1865 and 1917, in the world and about 23 million people died. During 1881 - 1896, the countries of Europe were affected by cholera. Dr. Robert Koch, who is considered to be the father of bacteriology, came to Calcutta in 1883 to conduct research on cholera patients. He discovered the cholera bacteria **'Vibrio cholerae**' and published his research paper in 1884. In 1855, the British Dr. John Snow had already discovered that cholera was transmitted by drinking contaminated water, but still scientists failed to find a proper treatment for it. Dr. Koch speculated that 'Vibrio cholerae' secretes a toxin that attacks the patient's blood circulatory system and paralyses it. (Page: 946)

Unfortunately, it took 76 years for bacteriologists to determine the nature of the toxin produced by ‚Vibrio cholerae’. Perhaps Dr. Koch's ideas were so influential to the scientists that they kept testing the cholera bacteria by injecting it in the blood of various healthy animals, but they could never replicate cholera in the laboratory. Scientist remained in the dark because of Dr. Koch's wrong idea.

Dr. Shambhunath De (01. 02. 1915 - 15. 04. 1985) was the head of the Department of Pathology and Bacteriology at Calcutta Medical College. He published more than 30 research papers during his lifetime and wrote excellent articles on cholera and its pathogenesis. His seminal works in the 1950s - 60s solved puzzles related to the toxin produced by 'Vibrio cholerae'.

Dr. Shambhunath did not agree with Dr. Koch's view. His assumption was that, cholera attacks the cells of the lining of the small intestine. Dr. De discovered the toxin '**Choleragen**' of 'Vibrio cholerae' and proved his conjecture with a successful experiment on rabbit. Dr. Shambhunath was also successful in explaining why there is a lack of water in the body due to cholera. His discovery was a completely new discovery which gave a new direction to medical research.

Oral rehydration therapy, discovered by Dr. Hemendranath Chattopadhyay (page 394) to ameliorate extensive fluid loss in cholera patients, which saved many lives, is believed to be a direct result of Dr. Shambhunath De's discovery of the toxic pathogens of cholera.

Dr. Hemendra Nath Chatterjee was an Indian scientist from West Bengal who first developed the Orally Rehydrated Saline (ORS) and demonstrated it.

These world-renowned discoveries and findings of Dr. Shambhunath De emerged from his research work done in very simple laboratory settings at 'Nilratan Sarkar Medical College', 'Calcutta Medical College' and 'Bose Institute', Kolkata. His research methodology was simple, easy to use and inexpensive. With his skills he has set the highest standards of excellence in execution.

Dr. De was working to identify 'Choleragen' so that a vaccine could be made to treat cholera. Due to the lack of modern equipment in India and neglect, his work started getting hampered which disappointed him continuously. In 1963, he

www.humnaabhooleen.com

के कारण व उपेक्षा के कारण उनके कार्यों में बाधा आनी आरम्भ हुई जो उन्हें निरंतर निराश करती थी। १९६३ [1963] में उन्होंने कहा, "मुझे अपना काम बंद करने के लिए मजबूर किया गया और मैंने हैजा में सभी रुचि खो दी है।" (पृष्ठ: ९५०) [950] ।

ऐसे कठिनाइयों के समय में भी डॉ. शंभुनाथ जी अपने शोधपत्र लिखते रहे। 'यूनिवर्सिटी कॉलेज अस्पताल मेडिकल स्कूल, लंदन' के सर रॉय कैमरन का समर्थन व प्रोत्साहन उन्हें मिलता रहा। १९६६ [1966] में अपने शोध-गुरु प्रोफेसर कैमरन की मृत्यु से वे गंभीर रूप से आहत हुए और कहा कि उनकी मृत्यु ने इन सभी बाधाओं के खिलाफ मेरे संघर्ष पर आखिरी कील ठोक दी है।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. जोशुआ लेडरबर्ग (अमरीकी जीव-वैज्ञानिक जिन्हे १९५८ [1958] में चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य के लिए नोबल पुरुस्कार मिला) डॉ. डे के शोध कार्यों से प्रभावित थे व उन्होंने डॉ. शंभुनाथ को नोबेल पुरस्कार के लिए एक से अधिक बार नामांकित किया था।

१९७३ [1973] में, ५८ [58] वर्ष की आयु में प्रोफेसर डे मेडिकल कॉलेज से सेवानिवृत्त हुए। शोध उनका अनुराग (जुनून) था परन्तु अपने नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियों के कारण वे स्वयं को अपने शोध को अपनी इच्छानुसार आगे बढ़ाने में असमर्थ पाते थे जिससे वे अत्यंत हताश थे (पृष्ठ: ९५१) [951]। अपने काम के लिए उचित पहचान न मिलने का भी उन्हें दुःख था। स्वयं को व्यस्त रखने के लिए फिर उन्होंने अपने आवास में ही एक रोगविज्ञान (पैथोलॉजिकल) प्रयोगशाला आरम्भ कर ली।

१९७८ [1978] में नोबेल फाउंडेशन ने उनसे हैजा और संबंधित दस्तों पर ४३ [43] वी नोबेल संगोष्ठी में भाग लेने के लिए अनुरोध किया। इस संगोष्ठी में डॉ. डे ने आभार व्यक्त करते हुए कहा, " मैं १९६० [1960] के दशक के आरम्भ से ही मरा हुआ हूं। नोबेल संगोष्ठी समिति ने मुझे खोद कर निकाला है और आपके साथ इन दो दिनों से मुझे लगता है कि मैं पुन: जीवित हो रहा हूं।"

प्रोफेसर डे का कार्य हमारे अपने समाज के लिए अत्यधिक प्रासंगिक था। यह विडंबना ही है कि उनका नाम आधुनिक वैज्ञानिकों की सूची में नहीं है। कोई भी पाठ्य पुस्तक विद्यालयों में उनकी उपलब्धियाँ नही बताती। भारतीयों का शोक है कि जगदीश चंद्र बसु, मेघनाद साहा और सत्येन्द्रनाथ बसु जैसी विभूतियों को कभी नोबेल पुरस्कार नहीं मिला परन्तु उन्होंने कम से कम आम भारतीय की प्रशंसा तो जीत ली है। इसके विपरीत अत्यधिक दुखद है कि बौद्धिक प्रतिभा और दृढ़ता से पूर्ण प्रोफेसर शंभुनाथ डे, जिनकी उपलब्धियों के कारण लाखों लोगों का जीवन बच सका, की गाथा सामान्य नागरिक के लिए अज्ञात रही है।

उनकी मृत्यु के पांच वर्ष बाद १९९० [1990] में **'करंट साइंस'** पत्रिका ने उनके ऊपर एक विशेष प्रति छापी थी। २०१८ [2018] में भारत सरकार की स्वायत संस्था 'प्रसार भारती' ने उन पर एक पुस्तक प्रकाशित की है। भारत सरकार द्वारा 'यूनेस्को' के तत्वाधान में स्थापित 'क्षेत्रीय जैवप्रैद्योगिकी केंद्र' ने उन्हें स्मरण करते हुए १४.०५. २०२१ को वेबिनार किया। [14.05.2021]

आज १ फरवरी को डॉ. शंभुनाथ डे के जन्म दिवस पर हम उन्हें, उनके कार्यों के लिए, जिनसे न केवल भारत में अपितु विश्व में लाखों लोगों की जान बचाई जा सकी, स्मरण करते हैं। आज भारत में हैजा जानलेवा बीमारी नही समझी जाती व लगभग समाप्त होती जा रही है।

शंभुनाथ डे एक निर्धन परिवार से थे। उनके पिता की मृत्यु शीघ्र हो गई थी। परिवार के पालन-पोषण के लिए सबसे बड़ी संतान होने से उन्होंने गांव की एक दुकान में नौकरी आरम्भ की। उनकी उच्च शिक्षा कलकत्ता के व्यापारी श्री के. सी. सेठ की छात्रवृति व उनके ही घर में रहने की व्यवस्था होने से ही संभव हो पाई।

हम न भूलें कि

- शंभुनाथ डे जी का जीवन हमें संघर्ष में, सीमित संसाधनों से बाधाओं को दूर कर लक्ष्य की ओर अग्रसर रहना सिखाता है।
- प्रतिभावान के लिए संसाधन सीमा नही बनते।
- समाज-कल्याण के लिए किए गए कार्य का प्रोत्साहन समाज का दायित्व है। प्रोत्साहन वह शक्ति है जो सफल कार्य को नए शिखरों पर ले जा सकती है।
- कृतघ्न समाज कभी अपना कल्याण नही कर सकता।
- समाज-कल्याण कार्यों में सभी को यथा-शक्ति योगदान देना चाहिए।

०१. ०२. २०२२

said, "I was forced to stop my work and I have lost all interest in cholera." (Page 950)

Even in times of such difficulties, Dr. Shambhunath ji kept writing his research papers. He continued to receive the support and encouragement of Sir Roy Cameron of 'University College Hospital Medical School, London'. He was deeply hurt by the death of his research mentor Professor Cameron in 1966 and said that his death has put the final nail on his struggle against all these odds.

Nobel laureate Prof. Joshua Lederberg (American biologist who received the Nobel Prize in Medicine in 1958) was impressed by Dr. De's research work and nominated Dr. Shambhunath more than once for the Nobel Prize.

In 1973, at the age of 58, Professor De retired from the Medical College. Research was his passion, but due to circumstances beyond his control, he found himself unable to pursue his research as per his wish, due to which he was extremely frustrated (page 951). He was also sad about not getting proper recognition for his work. To keep himself busy after retirement, he started a pathological laboratory in his own residence and started practicing privately.

In 1978, the Nobel Foundation requested him to attend the 43rd Nobel Symposium on Cholera and related Diarrhoea. In this symposium, Dr. De expressed gratitude and said, "I have been dead since the early 1960's, I have been exhumed by the Nobel Symposium committee and these two days with you make me feel that I am coming to life again."

Prof. De's research was highly relevant to our own society. It is ironic that his name does not figure in the list of modern scientists. No textbook tells about his achievements in schools. Indians lament that personalities like Jagdish Chandra Basu, Meghnad Saha and Satyendranath Basu did not get the Nobel Prize, but they have at least won the admiration of the common Indian. On the contrary, it is very sad that the saga of Professor Shambhunath De, full of intellectual brilliance and tenacity, whose achievements have saved the lives of millions, has remained unknown to the common citizen.

In 1990, five years after his death, the magazine **'Current Science'** published a special edition on him. In 2018, Prasar Bharati, an autonomous organization of the Government of India, has published a book on him. The 'Regional Center for Biotechnology' established by the Government of India under the aegis of 'UNESCO' remembered him on 14.05.2021 in a webinar.

Today, on 1st February, on the birth anniversary of Dr. Shambhunath De, we remember him for his research works, which saved millions of lives not only in India but in the world. Today, cholera is not considered a fatal disease in India anymore and is almost being eradicated.

Shambhunath De came from a poor family. His father died quite early. Being the eldest child, he started a job in a village shop to feed the family. He could pursue medical education because a wealthy businessman in Kolkata, Shri K. C. Seth gave him scholarship and arranged his accommodation in his own house.

Let us not forget that

- The life of Dr. Shambhunath De teaches us to keep moving towards the goal irrespective of all the struggles and keep removing obstacles even if limited resources are available.
- There is no limitation of resources for a talented person.
- It is the responsibility of the society to encourage the works done for the welfare of the society. Motivation is such an energy that can take even successful work to newer heights.
- An ungrateful society can never do good to itself.
- Everyone should contribute as much as possible to social welfare works.

01.02.2022

www.humnaabhooleen.com